पूज्य श्री लालचंदभाई के प्रवचन प्रश्नोत्तरी-सम्यग्दर्शन की विधि क्या है, सोनागिर तारीख़ ३०-०४-१९८९, प्रवचन नंबर P२०

पर्याय में पारिणामिकभाव का भाव लक्षण नहीं (है)। दूसरा, कर्म सापेक्ष है। आश्रय करने योग्य नहीं। आहाहा! इसमें अनंत गुण नहीं, इसलिए 'हेय' शब्द द्वेषवाचक नहीं है। द्वेष करने का (तो क्या कहें)? राग करने की मनाहीं जो है, राग करने की मनाहीं है जिस धर्म में, उस धर्म में द्वेष करने की छूट नहीं है।

मुमुक्षु:- कोई गुंजाइश ही नहीं है।

उत्तर:- हेय का अर्थ द्वेष नहीं है। हेय का अर्थ उपेक्षा है, वो मैं नहीं हूँ। उसके प्रति उदास रहता है। उसमें अहम् नहीं करना। बस, इतना ही।

मुमुक्षु:- अहम् करने लायक (वो) वस्तु नहीं है।

उत्तर:- नहीं है, इसलिए हेय है।

मुमुक्षु:- क्षणिक है।

उत्तर:- हाँ! क्षणिक है, नाशवान है।

मुमुक्षु:- हो सकता है।

उत्तर:- हो सकता है। अभी अपन जो कर्ता होवें, तो कहाँ से होवे? जो होता है, उसको जानता है, बस।

मुमुक्षु:- नहीं! वो अहम् करने लायक वो (नहीं है)। (अहम्) करेगा तो नुकसान हो जायेगा।

उत्तर:- नहीं है। तो सम्यग्दर्शन चला जायेगा। सम्यग्दर्शन होगा ही नहीं, मोक्ष ही नहीं होगा।

मुमुक्षु:- यह बात बहुत अच्छी आयी। ज्ञान की पर्याय, भले ही केवलज्ञान की पर्याय है, तो केवलज्ञान की पर्याय में ज्ञान गुण भी नहीं है, तो अनंत गुणात्मक आत्मा भी नहीं है।

उत्तर:- कहाँ से हो?

मुमुक्षु:- ज्ञान की पर्याय में ज्ञान गुण भी नहीं है और....

उत्तर:- मोक्ष की पर्याय में, केवलज्ञान की पर्याय में, उसका गुण उसमें नहीं है।

मुमुक्षु:- और अनंतगुणात्मक आत्मा भी नहीं है।

उत्तर:- वो कहाँ से हो, उसमें?

मुमुक्षु:- तो फिर वो उपादेय कैसे हो? इसलिए वो हेय है।

उत्तर:- कैसे उपादेय है? उपादेय तो आत्मा है, पर्याय उपादेय नहीं है। वो द्वेषवाचक नहीं है। वो जो है ना, हेय है ना, द्वेषवाचक नहीं है। राग करने की मनाहीं है, तो द्वेष करने की बात तो कहाँ रही? आहाहा!

मुमुक्षु:- यह न्याय बहुत अच्छा है।

उत्तर:- ऐसा है कि ज्ञान पर्याय में उसका गुण नहीं है, द्रव्य भी नहीं, तो फिर उपादेय कैसे हो? उपादेय न हो। उपादेय तो भगवान आत्मा है।

मुमुक्षु:- अनंत गुणात्मक भगवान आत्मा, वो उपादेय है। आहाहा!

उत्तर:- बस! 'हेय' तिरस्कारवाचक शब्द नहीं है। बेन! हेय है, वो तिरस्कारवाचक शब्द नहीं है। उसका वाच्य तिरस्कार नहीं है।

मुमुक्षु:- जानने लायक है।

उत्तर:- जानने लायक है। बस! इतना ही है। 'हेय' का अर्थ - उपादेय नहीं है, आश्रय करने योग्य नहीं है। उसका स्वरूप हेय है। बस! हेय का अर्थ उपेक्षा, उदासीनता, ये मैं नहीं हूँ। बस! है, पर्याय भी है। मगर इतना मैं नहीं हूँ, इससे अधिक मैं हूँ।

मुमुक्षु:- आहाहा!

उत्तर:- इतना मैं नहीं हूँ, इससे मैं अधिक हूँ। आहाहा! मैं तो परमात्मा हूँ। केवलज्ञान की पर्याय मैं नहीं हूँ, ऐसा स्वरूप है। सर्वज्ञ भगवान ने कहा है। (ये) किसी के घर की बात नहीं है।

मुमुक्षु:- समश्रेणी विराजमान अनंत सिद्धों ने यह बात कही।

मुमुक्षु:- यह बात कही।

उत्तर:- साड़े पाँच करोड़ मुनिराज समश्रेणी से इधर (से मोक्ष) गए। तो इस क्षेत्र में आने से... आहाहा! हमारे मस्तक के ऊपर साड़े पाँच करोड़ मुनि इधर से मोक्ष गए, उनको नमस्कार करता हूँ। उनकी साधना-भूमि है। मैं साधना, आपकी साधना भूमि में आया मैं, तो मैं भी आत्मा की साधना इधर करूँगा। बस! मेरे आत्मा की साधना करने के लिए मैं आया हूँ। जाननहार हूँ, करनार नहीं हूँ।

मुमुक्षु:- महामंत्र।

उत्तर:- 'जानने की क्रिया' में 'करोति क्रिया' भासती नहीं और 'करोति क्रिया' में 'जानने की क्रिया' भासती नहीं है।

मुमुक्षु:- उत्पाद-व्यय, यथार्थ।

उत्तर:- इसको निर्जरा कहने में आती है क्योंकि यह उत्पाद, आत्माश्रित होने से बंध का कारण होता नहीं।

मुमुक्षु:- यह उत्पाद, आत्माश्रित होने से बंध का कारण होता नहीं।

उत्तर:- ये उत्पाद, ध्रुव को प्रसिद्ध करता है, इसलिए (इससे) नया बंध होता नहीं। जो उत्पाद होता है ना, वो आत्मा को प्रसिद्ध करता है। इसलिए वो उत्पाद, व्यय तो होनेवाला है ही, मगर नया बंध नहीं करता है। पुराने बंध की निर्जरा होती है और नये आस्रव को रोकता है। निर्जरा होती है, नया बंध नहीं होता। **[सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग:]** है ना। सूत्र है।

मुमुक्षु:- बराबर! अज्ञान का उत्पाद व्यय भी.....

उत्तर:- हाँ! वो अज्ञानी का जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उपयोग लक्षण। समझे? राग की बात मत किया करो। उसमें उपयोग लक्षण प्रगट होता है, उपयोग...जानन-क्रिया होती है कि नहीं? अज्ञानी की जानन-क्रिया बंद हो गयी? होती है। तो उसका जो उत्पाद है, वो उसके ध्रुव परमात्मा को प्रसिद्ध करके ही व्यय होता है, मगर उसको ख्याल नहीं है। क्योंकि वो उपयोग आत्मा का है कि पर का है? आत्मा का है। तो जिसका है, उसको प्रसिद्ध करे ना। उसमें क्या? करता है, प्रसिद्ध करता है ज्ञान। ज्ञान, अपना ज्ञान अपने आत्मा को प्रसिद्ध करके बाद में (ही) व्यय होता है। प्रसिद्ध किए बिना व्यय ही नहीं होता है।

मुमुक्षु:- समय-समय?

उत्तर:- समय-समय पर ऐसी है, स्थिति ऐसी है। स्वीकार करे तो ज्ञानी हो जाता है।

मुमुक्षु:- वाह!

उत्तर:- कोई समय ऐसा नहीं है कि ज्ञान अपने आत्मा को प्रसिद्ध नहीं करे, ऐसा समय नहीं है। ऐसा समय तो है कि पर को प्रसिद्ध न करे, ऐसा समय तो है। मगर ऐसा समय नहीं है कि अपने को प्रसिद्ध नहीं करे।

मुमुक्षु:- अच्छा! पर को प्रसिद्ध करता ही नहीं है?

उत्तर:- (पर को प्रसिद्ध) करता ही नहीं सचमुच (तो), निश्चय से।

मुमुक्षु:- करता ही नहीं (है)?

उत्तर:- निश्चय से करता नहीं है क्योंकि परपदार्थ और उपयोग भिन्न-भिन्न हैं। और जो अभिन्न है, उसको प्रसिद्ध करता है। जो उपयोग तन्मय है आत्मा से, हाँ! उसको (प्रसिद्ध करता है)। ये प्रकाश है ना, ये प्रकाश सूर्य को प्रसिद्ध करता है। पृथ्वी को प्रसिद्ध नहीं करता है।

मुमुक्षु:- ये तो भिन्न है।

उत्तर:- वो भिन्न है इसलिए प्रसिद्ध नहीं करता है। अभिन्न को प्रसिद्ध करता है। लक्षण, लक्ष्य को प्रसिद्ध करता है। जो लक्षण है आत्मा का, उपयोग लक्षण है ना, वो तो प्रसिद्ध है ना। हें? और शास्त्र से तो प्रसिद्ध है, परंतु अनुभव से (भी) प्रसिद्ध है। सबको लक्षण है ना? लक्षण। तो वो जो लक्षण है, वो लक्षण किसका है? आत्मा का है। तो आत्मा को ही प्रसिद्ध करता है, लक्ष्य को प्रसिद्ध करता है। लक्षण लक्ष्य को प्रसिद्ध करता है। लक्षण और लक्ष्य, धर्म-भेद से भेद है, वस्तु तो एक है। आहाहा! वस्तु तो एक है। लक्षण जुदा है, (बस) इतना ही। उपयोग और आत्मा का लक्षण जुदा है, बाकी वस्तु तो एक है। तो लक्षण लक्ष्य को प्रसिद्ध करता है, अलक्ष्य को नहीं। यानि लकड़ी को ज्ञान जानता नहीं है। ज्ञान तो ज्ञान को जानता है, एक बात, अथवा ज्ञान ज्ञायक को जानता है, दूसरी बात। बस! तीसरी बात तो है ही नहीं।

मुमुक्षु:- लकड़ी को क्यों नहीं जानता?

उत्तर:- लकड़ी भिन्न है इसलिए। और (लकड़ी को) क्यों नहीं जानता है? कि लकड़ी की तरफ उपयोग ही नहीं है, इसलिए (उसको) नहीं प्रसिद्ध करता है। जिसकी तरफ लक्ष्य है, उसको प्रसिद्ध करता है। इसकी तरफ तो लक्ष्य है ही नहीं। (नहीं है।)

मुमुक्षु:- तो लकड़ी जानने में आती है, ऐसा भी नहीं?

उत्तर:- वो भ्रांति है। वो ही भ्रांति है, व्यवहार नहीं है।

मुमुक्षु:- ज्ञान को परप्रकाशक भी कहा है?

उत्तर:- परप्रकाशक कब कहा है? कि स्वप्रकाशक के बाद परप्रकाशक कहो, तो व्यवहार (है)। स्वप्रकाशक को छोड़ दिया आपने, लकड़ी जानने में आयी तो भ्रांति हो गयी (आपको), अज्ञान हो गया। स्वपरप्रकाशक कहाँ रहा? स्वपरप्रकाशक तो रहा, लक्षण है। वो लक्षण भी प्रमाणज्ञान से है। (स्वपरप्रकाशक) लक्षण है, मगर वो व्यवहार लक्षण है, निश्चय लक्षण नहीं है।

मुमुक्षु:- स्वपरप्रकाशक?

उत्तर:- हाँ! व्यवहार है क्योंकि स्व और पर को, दो को प्रसिद्ध करे, उसका नाम प्रमाणज्ञान है। उस प्रमाणज्ञान में से निश्चय निकालो कि स्व को जानता है और पर को जानता नहीं है, तो उपयोग अभिमुख हो जाता है। बाद में अनुभव के बाद पर को जाने, वो व्यवहार है। ठीक! अपने को जानने के बाद लकड़ी को जाने, तो व्यवहार है। अपने को छोड़कर लकड़ी को जाने, तो लकड़ी में आत्मबुद्धि हो जायेगी। अज्ञान प्रगट हो जायेगा, ये बात है।

मुमुक्षु:- लकड़ी में आत्मबुद्धि हो जायेगी, ये बात है। बहुत बढ़िया!

उत्तर:- जाने हुए का श्रद्धान। पर की अभी बात छोड़ो, (ये सोचो कि) लक्षण, लक्ष्य को प्रसिद्ध करता है कि नहीं करता है? बस! ये विचार करो। ये विचार करो ना। वो परपदार्थ को प्रसिद्ध करता है, तो आपकी नज़र पर(पदार्थ) पर (ही) जायेगी।

मुमुक्षु:- 'स्व' पर नहीं जाएगी।

उत्तर:- नहीं जायेगी। और प्रकाश के माध्यम के द्वारा... प्रकाश किसका है? अरे!

मुमुक्षु:- ये रहा सूर्य।

उत्तर:- ये...प्रकाश को देखने से सूर्य का आपको दर्शन हो जायेगा। और घट-पट को देखो उसके (प्रकाश के) माध्यम से, तो प्रकाश भी गया और सूर्य भी गया। ज्ञान भी गया और ज्ञायक भी गया, अज्ञान हो गया। आहाहा!

मुमुक्षु:- बहुत बढ़िया! महत्वपूर्ण बात है।

उत्तर:- बराबर! सुमतिलालजी? हें? लक्षण? अच्छा! गुड़ की मिठास है, वो बर्तन को प्रसिद्ध करता है कि गुड़ को?

मुमुक्षु:- गुड़ को।

उत्तर:- गुड़ को। हें?

मुमुक्षु:- गुड़ की मिठास।

उत्तर:- बर्तन को भी प्रसिद्ध करे, लक्षण, और गुड़ को प्रसिद्ध करे, दो क्रिया है उसमें? बर्तन को प्रसिद्ध न करे और गुड़ को ही प्रसिद्ध करे, ये स्वप्रकाशक है।

मुमुक्षु:- बराबर एकदम! आहाहा! नमक का खारापना, नमक को ही प्रसिद्ध करे, साग (सब्ज़ी) को नहीं।

उत्तर:- नहीं प्रसिद्ध करे। हाँ! ऐसी बात है।

मुमुक्षु:- लक्षण, लक्ष्य को ही प्रसिद्ध करे।

उत्तर:- बस एक ही है, इतना ही रखो। ये प्रकाश का दृष्टांत बहुत अच्छा है। ये प्रकाश है, ये प्रकाश है ना, उस प्रकाश से आपको ये (लकड़ी) जानने में आया। ये जानने में आया ना, (ऐसा आपने माना) तो प्रकाश भी जानने में नहीं आया और प्रकाशक भी जानने में नहीं आया। अच्छा! ज्ञेय तो यह है। तो प्रकाश तो है कि नहीं? तो इधर से दृष्टि हटकर प्रकाश पर आयी। अभी प्रकाश किसका है? कहाँ से आया था? देखूँ तो सही। (सूर्य की ओर नज़र करते हुए)। आहाहा!

मुमुक्षु:- ये तो दृष्टांत समझ में आ गया। (अभी) सिद्धांत?

उत्तर:- आहाहा! सिद्धांत, ये जो उपयोग है ना, वो आपका उपयोग, वो प्रकाश की जगह पर है। उपयोग है ना, प्रकाश की जगह (पर है)। देखो! लकड़ी दिखती है। ज्ञान की पर्याय में लकड़ी दिखती है। तो ज्ञान की पर्याय भी गयी और ज्ञायक भी गया। अभी हटो, इधर से। ये लकड़ी दिखने में नहीं आती है। लकड़ी जिसमें दिखने में आती है, ये ज्ञान मेरे को जानने में आता है। तो अभी ज्ञान कहाँ से आता है? लकड़ी में से आता है कि आत्मा (में) से?

मुमुक्षु:- आत्मा से।

उत्तर:- हाँ! तो आत्मा तक चला जाएगा।

मुमुक्षु:- लक्षण से ही लक्ष्य में चला जायेगा।

उत्तर:- हाँ! लक्षण में रुकते नहीं है। लक्षण में....

मुमुक्षु:- विचार करेगा कि ये कहाँ से आया।

उत्तर:- हाँ! कहाँ से आया? (वो) विचार करता है (कि) ये कहाँ से आता है प्रकाश, देखूँ तो सही। आहाहा! ये प्रकाश.... इधर-ऊधर पहले देखे। सूर्य तो दिखता ही नहीं है। बाद में प्रकाश, आहाहा! प्रकाश तो इधर है। ये है सूर्य। सूर्य दिख जाता है, ये चैतन्य सूर्य दिखता है। ज्ञान में चैतन्य सूर्य दिख जाता है। बस! प्रकाश किसको प्रसिद्ध करता है सूर्य का? बोलना कि सूर्य का प्रकाश और कहना कि दूसरे को प्रसिद्ध करता है, तो सूर्य का प्रकाश कहाँ आया?

मुमुक्षु:- नहीं आया। विपरीतता आ गई, सीधी विपरीतता है। पशु भी जान लेता है?

उत्तर:- पशु जान सकता है, आत्मज्ञान कर लेता है।

मुमुक्षु:- वो आत्मा है ना?

उत्तर:- आत्मा है, भगवान आत्मा है। वो लक्षण उसके पास प्रगट है। उस लक्षण के द्वारा (लक्ष्य तक पहुँच जाता है)। पहुँच जाता है। पहुँच जाता है। वो लक्षण जहाँ तक पर को प्रसिद्ध करता है, वहाँ तक लक्ष्य तिरोभूत हो जाता है। आपका ज्ञान इसको (लकड़ी को) प्रसिद्ध करता है, तो वो आत्मा तिरोभूत हो गया। आपको जानने में नहीं आया।

मुमुक्षु:- लक्षण और लक्ष्य दोनों निकल गए।

उत्तर:- हाँ, दोनों गया। ध्येय गायब हो गया।

मुमुक्षु:- सोनागिरि जी है ना?

उत्तर:- हाँ! सोनागिरी जी।

मुमुक्षु:- सिद्धक्षेत्र है ना?

उत्तर:- सिद्धक्षेत्र है।

मुमुक्षु:- भगवान का समवशरण आया था यहाँ।

उत्तर:- हाँ!

मुमुक्षु:- आज फिर आया।

उत्तर:- उत्पाद आत्मा को प्रसिद्ध करके बाद में व्यय होता है। नहीं तो व्यय ही नहीं होता है।

मुमुक्षु:- प्रसिद्ध करके ही व्यय होता है।

उत्तर:- उसका स्वभाव... पर्यायस्वभाव, अपना स्वभाव नहीं छोड़ता।

मुमुक्षु:- यह न्याय है, यह न्याय।

उत्तर:- न्याय! अपना धर्म नहीं छोड़ता (है)। तूने क्यों (अपना) धर्म छोड़ दिया?

मुमुक्षु:- ये न्याय है।

मुमुक्षु:- लक्षण अपना कभी धर्म नहीं छोड़ता है।

उत्तर:- नहीं छोड़ता है। पर्याय अपना धर्म नहीं छोड़ता है। हाँ! ऐसी चीज़ है।

(समयसारजी स्तुति)

मुमुक्षु:- वो कह रहीं हैं (कि) सुबह की बात फिर से दोहराइये।

उत्तर:- अच्छा! सम्यग्दर्शन प्रगट करने की विधि क्या है? यानि धर्म प्रगट करने की विधि क्या है? अर्थात् आत्मिक सुख प्रगट करने की विधि क्या है? एक ही बात है। मोक्षमार्ग कहो कि सुख कहो, मार्ग कहो, एक ही बात है।

तो सम्यग्दर्शन प्रगट करने की विधि ऐसी है, पहले तो सम्यग्दर्शन पर्याय है। सम्यग्दर्शन त्रिकाली द्रव्य नहीं है। सम्यग्दर्शन त्रिकाली गुण नहीं है। सम्यग्दर्शन वीतरागी परिणाम है। आत्माश्रित वीतरागी परिणाम है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन यानि जैसा आत्मा है, वैसा अनुभव करके, उसका श्रद्धान करना, प्रतीति करना, रूचि करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दर्शन तो पर्याय है। अभी प्रगट नहीं है, मिथ्यादृष्टि को। तो प्रगट करने की विधि क्या है? पर्याय तो प्रगट नहीं है, मगर एक बात अच्छी रह गयी है कि द्रव्य प्रगट है। भले (ही) सम्यग्दर्शन प्रगट वर्तमान में न हो, कोई बात नहीं। तो भी सम्यग्दर्शन का कारण है, वो प्रगट है। कार्य प्रगट नहीं है, मगर उसका जो कारण शुद्धात्मा है, जीवतत्त्व सामान्य, वो तो प्रगट है। सबके पास है। कारण प्रगट है। भले रोटी तैयार, प्रगट न हो, मगर रोटी बनाने का साधन, मूल गेहूँ, वो तो है। कोठी भरी है। समझे? ऐसे सम्यग्दर्शन, वो परिणाम प्रगट होता है, उसका आश्रयभूत कारण, अवलंबनभूत कारण, ये अपना शुद्धात्मा प्रगट है।

पहले में पहले.. पहले में पहले को क्या कहें? प्रथम में प्रथम, अपना शुद्धात्मा का स्वरूप समझना चाहिए। उस शुद्धात्मा का स्वरूप ऐसा है, तीनोंकाल की बात करता हूँ, तीनोंकाल शुद्ध है। परिणाम कितना, चाहे कितना (भी) अशुद्ध हो गया हो, हो, तो भी भगवान आत्मा द्रव्य तो तीनोंकाल शुद्ध (ही) है। कोई ऐसा कहे कि परिणाम अशुद्ध हो गया है, तो जीव भी अशुद्ध हो गया, ऐसा है नहीं। तीनकाल में बनता ही नहीं है। जो जीव अशुद्ध हो गया, तो सम्यग्दर्शन किसी को प्रगट ही नहीं होवे। इसलिए शुद्धपर्याय का कारण शुद्धात्मा प्रगट है। शुद्धपर्याय प्रगट नहीं है मगर उसका अवलंबनभूत कारण प्रगट है, वर्तमान में। सबके पास आत्मा है। उस आत्मा का स्वरूप ऐसा है कि जो देह-मन-वाणी से रहित है, ज्ञानावरणादि आठ प्रकार का कर्म, घाति-अघाति, १४८ कर्म प्रकृतियों से रहित है और पुण्य-पाप का परिणाम अथवा शुभ और अशुभ भाव, उसका नाम भावकर्म है, उससे (भी) आत्मा रहित है। और जो शास्त्रज्ञान, पर के ज्ञान की बात तो दूर रहो, मगर शास्त्र का ज्ञान जो प्रगट होता है, इन्द्रियज्ञान, मानसिक-ज्ञान, वो भावेन्द्रिय से भी आत्मा रहित है, वर्तमान में। और अतीन्द्रिय ज्ञानगुण से सहित है। इन्द्रियज्ञान से रहित और अतीन्द्रिय-ज्ञान, अतीन्द्रिय-दर्शन, अतीन्द्रिय-सुख, गुण, गुण त्रिकाली, उससे आत्मा वर्तमान में सहित है। ऐसे आत्मा का स्वरूप समझना चाहिए। और वो आत्मा

क्या करता है? दूसरा पोईंट कि, जो करे वो आत्मा नहीं है। आत्मा निष्क्रिय-परमपारिणामिक है। ऐसा धवल-महाधवल का पाठ है। [**निष्क्रिय शुद्ध पारिणामिक:**]।

शुद्धपारिणामिकभाव जो त्रिकाल है लक्षण आत्मा का, वो तदन्न निष्क्रिय है। क्रिया उसमें नहीं होती है। क्रिया पर्याय में होती है। द्रव्य में क्रिया नहीं होती है। तो ऐसा ये ध्रुव परमात्मा जो है, अनंत-गुणात्मक, वो वर्तमान में मौजूद है। वो कर्ता-भोक्ता नहीं है। कर्ता-भोक्ता धर्म परिणाम का है। कर्ता-भोक्ता धर्म जीव का, सामान्य जीव का नहीं है। क्रिया नहीं होती है जीव में। क्रिया होती है, वह आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा में होती है। समझ में आया भैया? क्रिया तो होती है मगर भगवान आत्मा में नहीं होती है। आत्मा से बाहर जो उत्पाद-व्यय होता है, परिणाम, पर्याय, पराश्रित आस्रव-बंध, स्वाश्रित संवर-निर्जरा, वो पर्याय में क्रिया होती है। नवतत्त्व, परिणाम का धर्म है, जीव का धर्म नहीं है। वो नवतत्त्व परिणाम का जो धर्म है, उसको जीवद्रव्य में स्थाप देना और कथंचित् करना, कहना, वो अज्ञान है। नवतत्त्व का भेद, यानि व्यवहार जीव निश्चय जीव में नहीं है।

आत्मा एक है, उसका पड़खा दो है, साईड, पहलू; एक सामान्य और एक विशेष। तो जीव विशेष में, व्यवहार जीव में, पाँच इन्द्रिय, मन-बल, वचन-बल, काय-बल, श्वासोच्छ्वास और आयु, ऐसी पर्याय की योग्यता पर्याय में है। वो धर्म जीव में नहीं है। उसको जीव का मान लेना अज्ञान है, पर्याय का जान लेना ज्ञान है। क्या कहा?

मुमुक्षु:- जीव का मान लेना, अज्ञान। पर्याय का जान लेना, सम्यग्ज्ञान।

उत्तर:- बस! है, मेरे में नहीं है। परिणाम, परिणाम में है। परिणाम से आत्मा भिन्न है, ऐसे नवतत्त्व। परिणाम से आत्मा भिन्न होने से परिणाम का आत्मा कर्ता नहीं है।

मुमुक्षु:- दस प्राण पर्याय के धर्म हैं?

उत्तर:- पर्याय का धर्म! व्रत-अव्रत, दोनों ही परिणाम का धर्म है। व्रत से बंध होता है, पुण्य का। क्या कहा? पाँच महाव्रत, शुभभाव इससे कर्म बंध होता है और अव्रत, पाप का परिणाम, हिंसा, झूठ, चोरी आदि, उससे पाप प्रकृति का बंध होता है। समझे? वो पर्याय का धर्म है और शुद्धात्मा का अनुभव होता है, वीतरागभाव होता है, तो संवर, निर्जरा प्रगट होती है, अतीन्द्रिय आनंद प्रगट होता है। प्रगट होता है, वो पर्याय का धर्म है और जो प्रगट है, वो द्रव्य का धर्म है। एक तत्त्व प्रगट है और दूसरा तत्त्व प्रगट होता है। प्रगट है और प्रगट होता है। प्रगट है, ध्रुव आत्मा रहकर उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय होता है। 'परमनेन्सी विथ ए चेंज' ऐसा परदेसी जीव का एक सूत्र है। 'Permanancy With A Change' यानि पदार्थ टिककर पलटता है। वो (लोग) भी कहते हैं। अपने में भी कहते हैं, उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तम्सत्। आत्मा टिकता है और परिणाम से पलटता है।

परिणाम से पलटता है, तो परिणाम से परिणाम पलटता है। और जिसकी दृष्टि परिणाम पर है, उसको ऐसी भ्रांति हो गयी है कि मैं पलट गया। और जिसकी द्रव्य पर दृष्टि है, वो तो जानता है कि मैं तो वही का वही हूँ। वो का वो ही हूँ और पलटता है, वह परिणाम का धर्म है। नहीं पलटता है, वो मेरा धर्म है। तो एक परिणाम होने पर भी वो कर्ता नहीं है क्योंकि एक परिणाम के दो कर्ता नहीं होता है। परिणाम का कर्ता परिणाम भी हो और परिणाम का कर्ता द्रव्य (भी) हो, ऐसा होता नहीं है। जो आत्मा परिणाम का कर्ता हो, तो सब(को) सम्यग्दर्शन प्रगट कर दे। अरे! सम्यग्दर्शन क्यों करे? मोक्ष (ही) कर दे। परिणाम को करने का अधिकार आत्मा का नहीं है। परिणाम को करने का अधिकार परिणाम में है।

मुमुक्षु:- तो परिणाम और परिणामी दोनों जुदे-जुदे हैं?

उत्तर:- परिणाम जुदा है और अपरिणामी जुदा है। अपरिणामी, परिणाम और परिणामी; अपरिणामी, (वो) द्रव्य है, परिणाम पर्याय है। दोनों को अनन्य कहना, वो परिणामी हो गया। समझे? अपरिणामी द्रव्य है, परिणाम पर्याय है और पर्याय और अपरिणामी को अभेदनय से परिणामी कहा जाता है। द्रव्य परिणामी है, ऐसा कहा जाता है। सचमुच तो अपरिणामी है। तो परिणाम का आत्मा कर्ता नहीं है, भोक्ता भी नहीं है, ऐसा शुद्धात्मा का निर्णय करना चाहिए, जो सम्यग्दर्शन का अवलम्बनभूत कारण-तत्त्व है, कारण-परमात्मा है। ऐसा पहले निर्णय करना चाहिए।

सब सुनते जाते हैं, पढ़ते (जाते हैं)। वाँचते जाते हैं का (अर्थ) क्या? पढ़ते जाते हैं। हाँ! पढ़ डाला। पढ़ के डाल दिया और सुनते जाते हैं। कोई दस साल से सुनता है, कोई बीस साल से, कोई चालीस साल से, बस। आहाहा! मगर निर्णय करना चाहिए कि मैं कौन हूँ? परिणाम का कर्ता कौन है और मैं कौन हूँ, ये दो बात नक्की करना चाहिए। आहाहा! और (ये) दो बात नक्की करने के बाद ही सम्यग्दर्शन होता है। ऐसे ही सम्यग्दर्शन होता नहीं है। जैसे हल्वा बनाना है, तो हल्वे की विधि तो चाहिए ना पक्की। आटा, शक्कर, आहाहा! घी, तीन चीज़ चाहिए कि नहीं? हाँ! तो ऐसे सम्यग्दर्शन यानि धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म की (पहली सीढ़ी), आहाहा! पहला पगथिया, वो सम्यग्दर्शन है.... उसका जो विषयभूत आत्मा, ये क्या है, ये समझना चाहिए।

ये आठ कर्मों का बंध जीव को भूतकाल में हुआ नहीं था, वर्तमान में है नहीं और भविष्यकाल में होगा नहीं; उसका नाम प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और आलोचना है। आहाहा! कर्म का बंध तो होता है। किसके साथ बंध होता है? अशुद्ध अंतःतत्त्व परिणाम के साथ बंध होता है। मैं तो अपरिणामी हूँ। आहाहा! मैं तो नित्य निरावरण हूँ। आहाहा! बैठना कठिन तो है मगर आत्मार्थी को सरल है। मतार्थी को कठिन है, धनार्थी को कठिन है, मानार्थी को कठिन है। मतार्थी, धनार्थी और मानार्थी, तीन बात बताया। मतार्थी यानि जो अजैन है, उसको वो बात कठिन लगती है। और (जो) जैन हो गया है, नाम से, तो उसको.....धन की प्राप्ति (का) लोलुपी, धनार्थी। और दूसरा, धन हो गया, अभी तो मान चाहिए, मानार्थी (है) उसका नाम, उसके लिए कठिन है। और आत्मार्थी, आत्मार्थी के लिए कठिन कुछ है नहीं। (उसको) तो केवल आत्मा ही चाहिए, इस भव में। दूसरा कोई कुछ संयोग हो (या) न हो, प्रतिकूलता हो देह सम्बन्धी, आर्थिक सम्बन्धी हो कि न हो, मैं तो एक चिदानंद आत्मा हूँ और मेरे में ज्ञान होता है। समझे? मैं ज्ञानमयी आत्मा, दर्शनमयी आत्मा हूँ। परिपूर्ण!

पीछे सम्यग्दर्शन का विषय पहले नक्की कर ले, इसका नाम द्रव्य का निश्चय। इसका नाम द्रव्य का निश्चय। और बाद में अनुभव करने के लिए, पर्याय का निश्चय होना चाहिए। ज्ञान की पर्याय का व्यवहार और ज्ञान की पर्याय का निश्चय। ज्ञान की पर्याय के व्यवहार का नाम है कि जो परिणाम, अपनी आत्मा को जानना भूल गया है और पर को जानने में रुक गया, वो पर्याय का व्यवहार है, निश्चय नहीं है। पर को जानते-जानते कभी आत्मा जानने में आयेगा नहीं। एक साथ दो कार्य नहीं होगा। पर को जानना चालू रखना है और आत्मा को जान लेना है, नहीं बनेगा। आहाहा! तो पर को जानने का बंद करना चाहिए पहले कि मैं पर को जानता नहीं हूँ। (मैं) जाननेवाले को जानता हूँ। तो ये ज्ञान की पर्याय जो ज्ञेय के सन्मुख थी, वो ज्ञान की पर्याय आत्मा के सन्मुख आती है। निर्णय किया आत्मा का, तो इस ज्ञान की पर्याय का निश्चय कब होता है? कि ज्ञायक की ओर झुककर अपने को जान लेवे। जान लेवे मतलब अनुभव में ले लिया। आहाहा! तो अनुभव का नाम सम्यग्ज्ञान है

और अनुभव में आया वो आत्मा, उसकी जो प्रतीति, श्रद्धा, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। ये विधि सम्यग्दर्शन की है। आहाहा! मगर निर्णय करना चाहिए। माताजी को फज़ल में कहा, किसी को अभी पूछना नहीं। आत्मा को पूछो कि मैं ज्ञाता हूँ कि मैं कर्ता हूँ? इतना निर्णय तो हो सकता है। नहीं हो सकता है? ये नेपकिन है, उसको मैंने उठाया कि वो अपने आप उठता है? क्या है?

मुमुक्षु:- अपने आप उठता है।

उत्तर:- वो जो मोर-पिच्छी है, अपने आप उठती है कि हाथ से उठाया मैंने? मेरा हाथ और हाथ से उठाया (ऐसी) एकत्वबुद्धि हो गयी। आहाहा! हाथ ही आत्मा में नहीं है। हाथ बिना का आत्मा है। ये दो आँख बिना का आत्मा है। ये चर्मचक्षु आत्मा में नहीं है, ज्ञानचक्षु है। आहाहा! हाथ से उठाया, मेरी आँख से मैं जानता हूँ। आँख में मेरापना स्थाप दिया। आँख तो ये द्रव्य इन्द्रिय है और उसका उघाड़ जो है, वो तो भावेन्द्रिय है। उसमें अहंबुद्धी करता है (तो) मिथ्यादृष्टि बन जाता है। इससे भिन्न अतीन्द्रिय ज्ञानमयी भगवान आत्मा मैं हूँ, (ऐसी) अंतर्दृष्टि करे, तो ज्ञान की पर्याय का निश्चय प्रगट होता है।

तो अंतर्मुखी ज्ञान से आत्मा का अनुभव होता है, बहिर्मुखी ज्ञान से आत्मा का अनुभव (नहीं होता)। और कर्ताबुद्धि से भी आत्मा का अनुभव नहीं होता। पर की कर्ताबुद्धि और पर की ज्ञाताबुद्धि, दो दोष हैं। पहले कहा कि मतार्थी को समझ में नहीं आवे, धनार्थी को समझ में नहीं आवे, मानार्थी को भी समझ में नहीं आवे। आत्मार्थी को समझ में आ जाता है और अनुभव कर लेता है, ऐसी परंपरा इस भारत में चालू है। आहाहा! कोई-कोई जीव आत्मानुभव कर लेते हैं। कठिन तो है, मगर रुचिपूर्वक प्रयत्न करे तो सरल भी है। इससे कोई सरल दूसरी चीज़ है ही नहीं। धर्म तो सरल है। अधर्म प्रगट करना वो आत्मा पर बलात्कार है, ऐसा पाठ है। शुभाशुभभाव अपना नहीं होने पर भी शुभाशुभभाव में अहंबुद्धी करना (कि) मेरा है, मैंने किया, भगवान की पूजा मैंने की। आहाहा! तूने जाना कि तूने किया? क्या किया?

मुमुक्षु:- जाना।

मुमुक्षु:- साहब! निश्चय से तो नहीं किया, व्यवहार से किया।

उत्तर:- आहाहा! निश्चय-व्यवहार की इसमें ज़रूरत नहीं है। आहाहा! व्यवहार से किया जो ऐसा बोलता है, वो निश्चय से कर्ता मान लेता है। क्योंकि निश्चय तो प्रगट हुआ नहीं और ज्ञानी का व्यवहार उछीना (उधार) ले लिया। उसके (अज्ञानी के) पास तो निश्चय है नहीं, उसके (अज्ञानी के) पास (तो) व्यवहार भी नहीं है। समझे? आहाहा! व्यवहारनय का प्रयोग करके अज्ञानी रह जाता है।

टोडरमलजी साहब ने लिखा है। भाई का प्रश्न है (कि) व्यवहारनय से की कि नहीं, पूजा? टोडरमलजी साहब फ़रमाते हैं कि व्यवहारनय से जितना निरूपण हो, उसको असत्यार्थ जानकर उसका श्रद्धान छोड़ देना। यानि पूजा मैंने की नहीं है। पूजा का भाव आया, उसका ज्ञान करनेवाला भी मैं नहीं हूँ। मैं तो आत्मा का ज्ञान करनेवाला हूँ, वो भी उपचार का कथन है। आहाहा! होता है, तो उपचार से कर्ता ज्ञान का कहा जाता है। फिर निर्विकल्पध्यान में जाने का काल आता है, तो उपचार से मैं ज्ञान का कर्ता नहीं हूँ, अतीन्द्रियज्ञान का मैं कर्ता नहीं हूँ (ऐसा मानता है)। और कर्ता नहीं हूँ, तो ये, (मैं) उसको जानता भी नहीं हूँ। भेद को जानता नहीं हूँ। (मैं तो) अभेद को जानता हूँ, तो फिर से अभेद, निर्विकल्पध्यान आ जाता है ज्ञानी को।

सत्य बात सुनने (को) मिले नहीं। ये करो, ये करो, ये करो, ये करो। ये करूँ, ये करूँ, ये करूँ, ये करूँ,

बस। आहाहा! जानूँ, जानूँ, जानूँ, जानूँ, उसमें तो आ जा। करना छोड़कर उसको जानूँ, उसको जानूँ, कोई परेशानी नहीं। ठीक है! कर्ता का भूतड़ा तो गया, अभी पर को जानने का भूतड़ा तो रह गया। वो भी भूत है। अभी जब ज्ञानी मिलें, (वो कहें) पर को जानना तेरा स्वभाव नहीं है, ज्ञान तो आत्मा का है, तो आत्मा को जान, तो धर्म होगा। बस! वो दोनों ही भूत निकल जाते हैं, कर्ताबुद्धि और ज्ञाताबुद्धि। पर की कर्ताबुद्धि (और) पर की ज्ञाताबुद्धि।

मुमुक्षु:- दोनों भूत एक साथ में जाते हैं (कि) अलग-अलग जाते हैं?

उत्तर:- एक साथ जाते हैं। समझने में, सुनने में, सुनानेवाले को क्रम पड़ता है और सुननेवाले को भी क्रम तो पड़ता है लेकिन निर्णय के बाद एक साथ जाते हैं। अनुभव के काल में दोनों भूत एक साथ जाते हैं। आहाहा! है मोहराजा का कार्य, मान लिया मेरा कार्य। आहाहा! शुभाशुभ को करनेवाला भी जड़ पुद्गल है। आहाहा! और इन्द्रियज्ञान का करनेवाला भी ज्ञेय पदार्थ है, ज्ञायक नहीं है। ज्ञायक तो ज्ञायक है, कारक नहीं है। ज्ञायक तो ज्ञायक है, कारक नहीं है। करनेवाला नहीं है। आहाहा! ज्ञायक तो ज्ञायक है, बस।

पहले मैं ज्ञाता हूँ और कर्ता नहीं हूँ। दिन में दस दफ़े तो कम से कम बोलना चाहिए। मैं ज्ञाता हूँ, कर्ता नहीं हूँ। मन में, ऐसा बोलना नहीं। कोई सुन न लेवे, मंत्र खानगी (रहस्य) रखना। मंत्र है ना, खानगी (रहस्य) रखना, अंदर में। वो अंदर में उतारना, किसी को सुनाना नहीं। आहाहा! बार-बार, मैं ज्ञाता हूँ, कर्ता नहीं हूँ। बाद में 'जाणनारा जणाय छे ने पर जणातुं नथी'। वो अपना स्टीकर है कि नहीं? लाओ ना, थोड़ा दो उनको। मेरे बैग में ही है, ऊपर। हिंदी का है, मेरे बैग में ऊपर। ले लो! ले लो! जिसके पास न हो, वो ले लो। आहाहा! बहनों माताजी को दे दो। पहले माताजी को एक दो। उसको सीधा रखना ऐसा, फोल्ड नहीं करना। बेंड (फोल्ड) नहीं करना। ये रखना, वो दीवार पर, अलमारी पर चिपका देना।

हाँ! मैं ज्ञाता हूँ और कर्ता नहीं हूँ। मैं जाननेवाला हूँ और करनेवाला नहीं हूँ। वास्तव में पर को जानता नहीं हूँ। ऐसा लिखा है ना? आहाहा! वो बुक में बताओ सबको, ऐसा चिपक जाता है। चिपक जाता है। दो भूत निकल जाते हैं। भेदज्ञान के मंत्र से भूत भाग जाता है और आत्मदेव प्रगट हो जाता है। आहाहा! मोहरूपी भूतड़ा, शास्त्र में बात है। मोहरूपी भूत पिशाच। आहाहा! पिशाच का वडगाड़ (भागना) हो गया है।

मुमुक्षु:- ज्ञानी का जन्म भूत भगाने के लिए ही होता है।

उत्तर:- हाँ! जब ज्ञानी की वाणी आती है ना, तब मोहराजा काँपता है। अरे! अरे! अरे! अभी मेरे को आहाहा! भागना पड़ेगा।

मुमुक्षु:- भगना पड़ेगा।

उत्तर:- भगना पड़ेगा। एक दफ़े ऐसा हुआ कि जब वो आत्मा का, चिंतवन, मनन, स्वाध्याय, भेदज्ञान का विचार, ज्ञानी का समागम करता है ज़्यादा, तो कुदरती शुभभाव होता है। तो शुभभाव से पुण्य प्रकृति भी बंधती है। तो पुण्य प्रकृति से, इस काल में भी, इस काल में भी लाखों-करोड़ों रुपया मिल जाता है। शुभभाव से पुण्य प्रकृति बंधती है, जघन्य अंतर्मुहुर्त में पुण्य प्रकृति उदय में आ जाती है। हाँ! तो ढेर आता है पैसा का। तो एक जीव जब गुरुदेव के समागम में आने लगा, तो उसकी पुण्य प्रकृति बढ़ने लगी। पहले तो दो-चार लाख रुपया था। बाद में दो-चार करोड़ हो गया। तो एक दफ़े मैंने फोन किया उस पार्टी को, मुमुक्षु को, मुंबईवाली। (तब) मैं मुंबई में रहता था। कि भाईसाहब! ख्याल रखना। कि क्या ख्याल रखूँ? कि मोहराजा ने, मोहराजा ने

बड़ी सेना आपके वहाँ भेजी है। कि क्या सेना? सेना भेजी है क्योंकि वो पैसा मिले तो धर्म भूल जावे, इसलिए उसने प्रयोग किया है, मोहराजा ने। ख्याल करना। आहाहा! फँस नहीं जाना, पैसे में, लक्ष्मी में। हाँ! मैं चेतता रहूँगा। मैं (चेतता रहूँगा)। तो चेतता ही रहा, तो बच गया वो। मोहराजा ने सेना भेजी। थोड़े दो-चार नहीं, सारी सेना, लाखों रुपया, ढगला, चाँदी, सोना और वो बर्तन, टेबल, बंगला। आहाहा! फँस जाता है उसमें।

प्रतिकूल संयोग में तो धर्म याद आता है, मगर अनुकूल संयोग में धर्म याद आना मुश्किल है। आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषयों में फँस जाता है जीव। क्या सुमतिभाई! समझे? एक कॉन्ट्रैक्ट लिया और लाखों रुपया (मिल गया)। ध्यान रखना, मोहराजा ने सेना भेजी है। मैं जानता नहीं हूँ, ऐसे ही कहता हूँ नाम लेकर। आहाहा! सबके लिए (है)।

मुमुक्षुः- बराबर है! सबके लिए है। बात मेरी है।

उत्तरः- बराबर है? सबके लिए, सबके लिए है। हाँ, बस!

चेतता रहना, मोहराजा से। उसने (मोहराजा ने) कहा (कि) और तो (कोई) प्रलोभन दूँ, तो फँसेगा नहीं। हें? पैसा से फँस जायेगा। गुजराती से ज़्यादा मारवाड़ी फँसता है उसमें। भाईसाहब!

मुमुक्षुः- सही बात है।

उत्तरः- सही बात है। पैसा से (मारवाड़ी ज़्यादा फँसता है)। लोभ कषाय है ना? आहाहा! फँसना नहीं, भले आवे लक्ष्मी। आहाहा! भले जड़ का ढेर हो जावे, जड़ का ढगला, ढेर भले हो जाये। मेरी, ये चीज़ मेरी नहीं है। एक परमाणुमात्र मेरा नहीं है, मेरा तो ज्ञान है! आहाहा! शुभभाव करना, ऐसा करने का अभिप्राय रखना, वो अज्ञान है।

मुमुक्षुः- अज्ञान?

उत्तरः- अज्ञान। और शुभभाव से मेरा आत्मा जुदा है, ऐसा बार-बार विचार करना, वो व्यवहार है। और अभेद का अनुभव करना, वो निश्चय है। एक दफ़े ऐसा हुआ राजकोट में, पहले तो राजकोट में फज़ल में वाँचता था, अभी तो नहीं वाँचता हूँ। आहाहा! थकावट लगती है, तो अभी नहीं वाँचता हूँ। पहले वाँचता था। तो एक डॉक्टर साहब थे, FRCA, समझे? मुमुक्षु अपने। रोज़ आयें वाँचन में। एक दिन उसने कहा भाईसाहब! आप निश्चय की बात तो बराबर बताते हैं, थोड़ी इसमें व्यवहार की बात आ जाये, तो सोने में सुगंध हो जाये। अच्छा! कल से मैं व्यवहार की बात करूँगा, कल से। तो खुशी-खुशी हो गया वो। अच्छा! मेरी बात आयेगी। ऐसा शुभभाव करो, ऐसा शुभभाव करो। खुश हो गया! दूसरे दिन आया तो मैंने कहा कि जो शुभभाव आता है, उससे मेरा ज्ञानानंद परमात्मा भिन्न है, ऐसे बार-बार विचार करना, भेदज्ञान का विचार, उसका नाम व्यवहार है। शुभभाव करना व्यवहार नहीं है क्योंकि करने की शक्ति ही आत्मा में नहीं है। जानने की शक्ति है, मगर करने की शक्ति नहीं है। क्योंकि करने की शक्ति हो, तो आप जब पूजा में बैठे, पूजा में, सबको अनुभव है (इस बात का) थोड़ा-थोड़ा। पूजा में तो शुभभाव हुआ, तो (उस समय भी) दुकान का विचार आ जाता है। आना नहीं चाहिए। जो आत्मा शुभभाव का कर्ता हो तो शुभभाव ही चालू रहना चाहिए। हें? दुकान का, उघराणी (वसूली) का विचार, कोई विचार आना नहीं चाहिए। आहाहा! भैया! सोना (नींद) नहीं, इसमें सोने (नींद) की बात नहीं है। (सोना) प्रमाद है। प्रमाद है। आहाहा!

तो मैंने कहा कि भेदज्ञान का विचार, भेदज्ञान का विचार, उसका नाम व्यवहार और शुभभाव करने का

अभिप्राय (वो) अज्ञान है। हाँ! शुभभाव आता है। शुभभाव आर्यजन को, मुमुक्षु को शुभभाव आता है। आवे। उससे मैं आत्मा जुदा हूँ, ऐसा जानना बार-बार। आत्मा को जानना। शुभभाव आया, उसको जानने में रुकना नहीं। शुभभाव आया, उसको जानने में रुकना नहीं। उससे जुदा मैं आत्मा हूँ, ऐसे बार-बार आत्मा की सन्मुखता का प्रयोग करना। आहाहा!

मुमुक्षु:- तो साहब! निश्चय के साथ व्यवहार कैसे हो जाता है?

उत्तर:- ये व्यवहार आया ना भेदज्ञान का विचार, उसका नाम व्यवहार है। धर्म नहीं है, शुभभाव है। भेदज्ञान का विचार, उसका नाम शुभभाव है। शुभभाव करना, उसका नाम पाप है। क्या कहा? मैं करनेवाला हूँ, तो मिथ्यात्व का पाप है। समझे?

शुभभाव आता है उससे मैं जुदा हूँ, ऐसे बार-बार विचार करना, वो व्यवहार है। भेदज्ञान के दो भेद हैं, सविकल्प भेदज्ञान (और) निर्विकल्प भेदज्ञान। शुरुआत में भेदज्ञान का विचार आता है, सविकल्प (भेदज्ञान)। अनुभव के काल में वो विकल्प भी छूट जाता है। अनुभव (निर्विकल्प) हो जाता है।

मुमुक्षु:- साहब! विकल्प सहित है, वो शुभभाव है? जब विकल्प सहित जो है, भेदज्ञान है....

उत्तर:- भेदज्ञान का जो विचार है, वो ज्ञान है और ज्ञान के साथ-साथ जो विकल्प उत्पन्न होता है, वो शुभभाव है। दो भाव होता है, अकेला विकल्प नहीं रहता है। क्या कहा? भेदज्ञान के विचार में, एक तो विचार है, वो ज्ञान की पर्याय है। समझे? वो विचार है ना ज्ञान की पर्याय है। मानसिकज्ञान की पर्याय। उसके साथ जो विकल्प उत्पन्न होता है, वो चारित्र गुण की पर्याय है। विचार, ज्ञान गुण की पर्याय है। दो अलग-अलग हैं। और विचार में शुभभाव नहीं है और शुभभाव में विचार नहीं है। शुभभाव और विचार, दो अलग-अलग चीज़ हैं।

मुमुक्षु:- विकल्प है, वो चारित्र गुण की पर्याय है?

उत्तर:- हाँ! और विचार चलता है, (वो) ज्ञान गुण की पर्याय है। भले भावेन्द्रिय, मन का विषय है, तो भी ज्ञान की पर्याय है। चारित्र की शुभभाव की पर्याय है, वो तो जड़ है। उसमें विचार करने की शक्ति नहीं है और मानसिकज्ञान में विचार करने की शक्ति है। मानसिकज्ञान अलग है और शुभभाव अलग है और उससे भिन्न आत्मा अलग रहता है। आहाहा! वो खीचड़ा कर लेता है। शुभभाव क्या? विचार क्या? और भगवान आत्मा क्या? तीन चीज़ अलग-अलग हैं। आहाहा! दो क्रिया एक साथ में होने पर भी, विचार की क्रिया में राग नहीं है और राग की क्रिया में विचार नहीं है। ज्ञान की क्रिया में राग नहीं है और राग की क्रिया में ज्ञान नहीं है। 'ज्ञप्ति-क्रिया' में 'करोति-क्रिया' नहीं है और 'करोति-क्रिया' में 'ज्ञप्ति-क्रिया' नहीं है। अलग-अलग हैं दो चीज़। आहाहा! विकल्प आता है, चिंता मत करो। आपके विचार में ज्ञान की पर्याय में ज्ञायक को ले लो। भले हो बाहर में राग, छूट जाता है। एकत्वबुद्धि का राग अनुभव के काल में (छूट जाता है)। व्यवहार की बात भी जानता नहीं है। शुभभाव करना व्यवहार मानता है। शुभभाव से आत्मा जुदा है, ऐसे मानसिक विचार का नाम व्यवहार है, आहाहा! जो व्यवहार निश्चय का प्रेरक है। आहाहा!

मुमुक्षु:- प्रेरे जे परमार्थने, ते व्यवहार समंत।

उत्तर:- उपयोग लक्षण है, ऐसा विचार करना व्यवहार है। राग आत्मा का लक्षण ही नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु:- जीवतत्त्व संबंधी भूल और संवरतत्त्व संबंधी भूल, सुबह में जो आयी थी, वो ले लीजिये।

उत्तर:- जीवतत्त्व संबंधी भूल और संवरतत्त्व संबंधी भूल, दो भूल रह गयी। जीवतत्त्व संबंधी वो भूल है

कि जो आत्मा परिणाम से रहित होने पर भी, परिणाम से सहित मान लेता है, वो जीवतत्त्व संबंधी भूल है। क्या कहा? परिणाममात्र से रहित होने पर भी परिणाम से सहित मैं हूँ, ऐसा मान लेना, वो जीवतत्त्व संबंधी भूल है। परिणाम से मैं सहित हूँ, ऐसा माननेवाले (को) परिणाम में कर्तृत्वबुद्धि और भोगतृत्वबुद्धि रह जाती है। और परिणाममात्र से मैं रहित हूँ, बंध-मोक्ष के परिणाम से मैं रहित हूँ, ऐसा मैं अनंत गुण से सहित और अनंत परिणाम से रहित, ऐसा जीव का निर्णय करना, वो द्रव्य का निश्चय है। वो द्रव्य का निश्चय है। वो जीवतत्त्व की बात आयी।

अभी पर्याय में भी भूल हो गयी कि जो ज्ञान जिसका है, उसको जानना छोड़ दिया और जो ज्ञान जिसका नहीं है, उसको जानता है, उसका नाम आस्रव है। उसका नाम....आस्रवतत्त्व उत्पन्न होता है, मिथ्यात्व, अध्यवसान। अभी संवर प्रगट करना हो तो क्या करना? कि जैसा जीवद्रव्य का स्वरूप ख्याल में लिया, उसको अंतर्मुख होकर जान लेना, वो ज्ञान की पर्याय का नाम संवर है। पर को जानना बंद करके अपने आत्मा को जानना, उसका नाम संवरतत्त्व है। आहाहा! द्रव्य का निश्चय, पर्याय का निश्चय। जीवतत्त्व द्रव्यरूप है और संवरतत्त्व पर्यायरूप है। पर्याय ही संवरतत्त्व है, या तो आस्रवरूप है और या तो संवररूप है। भेदज्ञान न करे और पर को अपना माने, अपना, वो तो आस्रव हो गया। हें? देहादि पर (द्रव्य) है, (उसको) अपना मानना, तो आस्रवतत्त्व है। और आत्मा को आत्मा मानना-जानना, वो संवरतत्त्व है। उसमें एक पैसे का खर्च नहीं। इन्कम टैक्स लगे नहीं, सेल्स टैक्सवाला आवे नहीं और काम हो जाये। और आजू-बाजूवाले कोई जाने ही नहीं और भाई भाग लेवे ही नहीं। भाई-भाग समझे? दो लड़का है ना आपका, तो पिंकी कमाएगा ज्ञान, तो उसमें बबलू का भाग नहीं होगा। आहाहा!

मुमुक्षुः- बँटवारा नहीं होता।

उत्तरः- आप बनावे, आप (ही) खावे, ऐसा है। आनंद का भोजन कर। रुचि चाहिए। मेरे (को) ये भव में, ये भव में आत्मा की प्राप्ति, (आत्म) दर्शन करना है और कुछ करना नहीं है।

ऐसे धर्मदास क्षुल्लक हो गए ना एक, ज्ञानी हो गए। उनको तमन्ना लगी कि भगवान का दर्शन करना है। मेरे (को) भगवान का दर्शन करना है। तो किसी ने कहा कि गिरनार जाओ। तो गिरनार गए। सम्मेदशिखर जाओ, तो सम्मेदशिखर गए। सम्मेदशिखर से वापस आए कि कितनी बार ऊपर (पर्वत की) यात्रा की? कि एक बार। एक बार नहीं, सौ बार करो तो भगवान का दर्शन (होगा)। फिर से गए, सौ दफ़े (किया)। सौ दफ़े ऊपर चढ़े, उतरे, चढ़े, उतरे। आहाहा! समझे? कोई कहे कि महावीरजी जाओ, तो महावीरजी गए। समझे? कोई कहे कि सोनागिरि है, साड़े पाँच करोड़ मुनिराज इधर से मोक्ष में गए। वहाँ जाओ तो भगवान का दर्शन होगा। तो आए सोनागिरि। हेतु तो भगवान का दर्शन करने का। गए (सोनागिरि), पर भगवान तो बाहर हैं नहीं। ये बाहर ढूँढता है। आहाहा!

किसी ने कहा कि आप ऐसा करो कि उपवास करो। एक दिन उपवास, एक दिन खाना, ऐसा बारह महीना करो तो भगवान का दर्शन ज़रूर हो जायेगा। आहाहा! अच्छा! तो वो करने लगा। समझे? आहाहा! कोई जो कहे, वैसी क्रिया करने लगे। करते-करते थक गए लेकिन भगवान का दर्शन तो हुआ नहीं। अभी क्या करना? तो भी ढूँढ़ते रहे। उसमें बराड़ में एक दफ़े गए। वहाँ कारंजा है, कारंजा। बराड़ का एक गाँव है। नागपुर, जैसे अकोला है नया गाँव का नाम, ऐसे कारंजा है। तो किसी ने कहा कि आप कारंजा पहुँच जाओ।

वहाँ एक देवेंद्रकीर्ति भट्टारक हैं। समझे? बड़ी उम्र के, नब्बे साल की उम्र है अभी। नब्बे साल की, १०० में १० कम। वहाँ पहुँच जाओ तो भगवान का दर्शन हो जायेगा क्योंकि वो समयसार के पाठी हैं। अच्छा! तो वहाँ गए। गए, विनयपूर्वक नमस्कार किया कि बापूजी! मेरे को भगवान का दर्शन करना है और कोई अभी जीवन में आकाँक्षा, आशा-तृष्णा नहीं है। ये किया, ये किया, सब वर्णन कर दिया। सब वर्णन कर दिया। तो भी भगवान का दर्शन हुआ नहीं है। अच्छा! क्या अँधा है? देखनेवाले को देखता नहीं है। वो विचार में पड़ गए कि ये क्या कहते हैं? मार्मिक बात तो है। समझ में नहीं आयी। आँख तो मेरी है। वो भी देखता है कि आँख मेरी है। और मेरे को अँधा कहते हैं, ये क्या (बात) है? तो वो विनय चूका नहीं। बैठा रहा २-४ मिनट। बाद में कहा, बापूजी! मैं समझा नहीं। फिर से कुछ कहो। दुबारा कहो। ये प्रेमचंदजी हैं।

मुमुक्षु:- आपके कोडवर्ड का भावार्थ नहीं समझा।

उत्तर:- दोबारा कहो, प्रेमचंदजी कहते हैं। समझे? आहाहा! ऐसे उसने कहा बापूजी! आपका कहने का आशय, रहस्य मैं समझ सका नहीं। नहीं समझ में आया, फिर से आप कहो। तो फिर से उन्होंने क्या कहा? क्या देखनेवाले को देखता नहीं है? इशारा किया। जाननेवाले को जानता नहीं है? इशारा किया। अरे! ओह! ये तो भगवान तो इधर हैं। अच्छा! तो वो पलट गया उपयोग। उपयोग पलटा, तो वहीं के वहीं, बैठे-बैठे सम्यग्दर्शन हो गया, अनुभूति हुई। और अनुभूति हुई, खड़ा होकर, जैसे लकड़ी पड़े ना लकड़ी, सीधा लम्बा (होकर नमस्कार किया)। ऐसा-ऐसा (हाथ जोड़कर) नहीं। आहाहा! क्या भगवान का दर्शन हो गया? हाँ! आपके प्रताप से, आपके प्रताप से। ऐसी सीधी-सादी बात है। जाननेवाले को जान, देखनेवाले को देख। ये सब समयसार में भरा है, इसमें सब है। आहाहा! आँख खोलकर पढ़ लो। आहाहा! इसमें सब माल भरा है, भाव ब्रह्माण्ड के भरे हैं। समयसार का अर्थ, समयसार दो जगह पर है। एक तो ये समयसार (शुद्धात्मा) सबके पास है और ये समयसार (शास्त्र) तो कोई-कोई के पास होता है। अन्यमति के पास तो है नहीं और हो कभी तो अलमारी में रखता है, खोलता नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु:- वाह प्रभु वाह! वाह प्रभु वाह! जाणनार को जणवा दिया।

उत्तर:- अपनी बात है ना? अपनी बात है ना? और तो कुछ किसी के पास, लेना-देना नहीं है! हें? अपने पास है, अपने आत्मा को देख लो, अंतर्मुख होकर। दिखाई देता है, ऐसी परम्परा चालू है। अभी भी चालू है। गुरुदेव के जाने के बाद भी चालू है।

मुमुक्षु:- मैं करनार नहीं हूँ और द्रव्यसंग्रह में कर्ता और कर्म कैसे है?

उत्तर:- वो व्यवहार की बात है। द्रव्यसंग्रह में आता है, गोम्मटसार में आता है, समयसार में भी आवे। व्यवहारनय का कथन अलग है, निश्चयनय का कथन अलग है। मैंने बताया आपको, निश्चयनय से जितना निरूपण है, उसको सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना और व्यवहारनय से जितना निरूपण है, वो असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ देना। द्रव्यसंग्रह में आता है, समयसार में भी आता है, अशुद्धनिश्चयनय से आत्मा भेदज्ञान का अभाव होने से राग का कर्ता है। भेदज्ञान होने पर भी एकदेश शुद्धनय से आत्मा ज्ञान, दर्शन, चारित्र का कर्ता है। ऐसे अकर्ता को कर्ता का व्यवहार लगाकर समझाते हैं। तो कौन से नय का ये कथन है? जहाँ कर्ता आवे, वहाँ व्यवहारनय का कथन समझना। जहाँ अकर्ता-ज्ञाता आवे, वहाँ निश्चयनय का कथन समझना। उसको अंगीकार करना और उसकी (व्यवहार की) श्रद्धा छोड़ देना। व्यवहार

छोड़ने की बात नहीं है, व्यवहार का श्रद्धान छोड़ दे, उसमें मर्म है। पुण्य से धर्म नहीं होता है। ज्ञानी की वाणी आ गयी, तो पुण्य छोड़ दिया उसने, ऐसा नहीं है। पुण्य से धर्म मानना, मान्यता छोड़ दे। पुण्य तो रहता है। ये सूत्र है, जिनागम का ये अर्थ समझने की चाबी है। समयसार का, जिनागम का अर्थ समझने की चाबी दी टोडरमलजी साहब ने दो सौ साल पहले। आहाहा! ज्ञानी हो गए।

मुमुक्षु:- आत्मार्थी से व्यवहार कहाँ छूटे? आत्मार्थी से व्यवहार छूटे कब?

उत्तर:- व्यवहार छूटता तो है, बाद में व्यवहार खड़ा हो जाता है। एक दफ़े तो छूट जाता है। बाद में खड़ा हो जाता है। बाद में छोड़ने की चेष्टा करता है। बाद में भी रखने की चेष्टा साधक नहीं करता है, ऐसी बात है। टाइम हो गया।

बोलो परम उपकारी श्री सद्गुरुदेव की जय हो!

गुरु प्रताप जयवंत वर्तो, जयवंत वर्तो, जयवंत वर्तो!

एक दफ़े अनुभव के काल में व्यवहार छूट जाता है। बाद में, अनुभव के बाद (शुभभाव) आता है, तो शुभभाव को जानना, ऐसा व्यवहार आ जाता है। बाद में शुभभाव को जानना बंद करके, बार-बार अंदर में चला जाता है। समझे? एक दफ़े ऐसा आयेगा, सब व्यवहार प्रलय होकर केवलज्ञान होगा।